

स जयतु जिनधर्मो यत्प्रसादाज्जनोयं भवति सुरनरेन्द्रश्रीशिवश्रीपतिश्च ।
तदिह विदिततत्त्वैः श्रीजिनेन्द्रोक्तधर्मे परमपदसुखाप्त्यै सारयत्नो विधेयः ॥२६॥
इति कथाकोशे श्रीसुव्रतमुनेराख्यानं समाप्तम् ।

१८. हरिषेणख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनं भक्त्या केवलज्ञानलोचनम् । कथ्यते हरिषेणस्य कथाशयवशाश्रिता ॥१॥
अङ्गदेशे सुविख्याते कांपिल्यनगरे वरे । राजा सिंहध्वजस्तस्य राज्ञी वप्रा गुणोज्ज्वला ॥२॥
तस्याः श्रीहरिषेणख्योभवत्पुत्रो विचक्षणः । भटाग्रणीः सतां मान्यो दाता भोक्ता सुलक्षणः ॥३॥
सा वप्रा श्राविका श्रीमज्जिनपादाब्जषट्पदी । नन्दीश्वरमहापूजां कारयत्येव भक्तितः ॥४॥
तथा प्रभोर्द्वितीया च राज्ञी लक्ष्मीमती प्रिया । सैकदा भूपतिं प्राह कुदृष्टिः स्वमदोद्धता ॥५॥
भो प्रभो पत्तने पूर्वं मदीयो ब्रह्मणो रथः । भ्रमत्वद्य तदाकर्ण्य राज्ञा प्रोक्तं भवत्विति ॥६॥
तच्छ्रुत्वा सा सती वप्रा राज्ञी सद्धर्मवत्सला । पूर्वं मे रथयात्रायां जातायां दत्तसम्पदि ॥७॥
भोजनादौ प्रवृत्तिर्मे प्रतिज्ञामिति मानसे । करोति स्म सतां नित्यं शरणं धर्म एव हि ॥८॥

वह जैनधर्म जय लाभ करे, संसार में निरन्तर चमकता रहे, जिसके प्रसाद से एक तुच्छ प्राणी भी देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों की सम्पत्ति लाभ कर-उसका सुख भोगकर अन्त में मोक्षश्री का अनन्त, अविनाशी सुख प्राप्त करता है। इसलिए आत्महित चाहने वाले बुद्धिमानों को उचित है, उनका कर्तव्य है कि वे मोक्षसुख के लिए परम पवित्र जैनधर्म के प्राप्त करने का और प्राप्त कर उसके पालने का सदा यत्न करें ॥२६॥

१८. हरिषेण चक्रवर्ती की कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्ती की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अंगदेश के सुप्रसिद्ध कांपिल्य नगर के राजा सिंहध्वज थे। इनकी रानी का नाम प्रिया था। कथानायक हरिषेण इन्हीं का पुत्र था। हरिषेण बुद्धिमान् था, शूरवीर था, सुन्दर था, दानी था और बड़ा तेजस्वी था। सब उसका बड़ा मान-आदर करते थे ॥२-३॥

हरिषेण की माता धर्मात्मा थी। भगवान् पर उसकी अचल भक्ति थी। यही कारण था कि वह अठाई के पर्व में सदा जिन भगवान् का रथ निकलवाया करती और उत्सव मनाती। सिंहध्वज की दूसरी रानी लक्ष्मीमती को जैनधर्म पर विश्वास न था। वह सदा उसकी निन्दा करती थी। एक बार उसने अपने स्वामी से कहा-आज पहले मेरा भगवान् का रथ शहर में घूमे ऐसी आप आज्ञा दीजिए, सिंहध्वज ने इसका परिणाम क्या होगा, इस पर कुछ विचार न कर लक्ष्मीमती का कहा मान लिया। पर जब धर्मवत्सल वप्रा रानी को इस बात की खबर मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं खाना-पीना तभी करूँगी जब कि मेरा रथ पहले निकलेगा। सच है-सत्पुरुषों को धर्म ही शरण होता है, उनकी धर्म तक ही दौड़ होती है ॥४-८॥

भोजनार्थं समागत्य हरिषेणः सुतोत्तमः। दृष्ट्वा तां मातरं पृष्ट्वा कारणं निर्गतो गृहात् ॥९॥
 विद्युच्चौरस्य संप्राप्तः पल्लिकामतिनिर्भयः। तं विलोक्य शुकः प्राह दुष्टात्मा तत्स्करान्प्रति ॥१०॥
 अहो राजसुतो याति युष्माभिर्धियते ध्रुवम्। दुष्टानां संगतिं प्राप्तः प्राणी वक्ति कुतो हितम् ॥११॥
 ततो निर्गत्य वेगेन हरिषेणो विचक्षणः। संप्राप्तस्तापसस्याशु शतमन्योश्च पल्लिकाम् ॥१२॥
 तत्रापि तं समालोक्य शुकश्चान्यः शुभाशयः। यत्राकृतिर्गुणास्तत्र संवसन्ति स्वमानसे ॥१३॥
 इत्याकलय्य संप्राह राजपुत्रोयमद्भुतः। यात्युच्चैर्गौरवं यूयं शीघ्रं संकुरुतास्य भो ॥१४॥
 तच्छ्रुत्वा हरिषेणेन प्रोक्त्वा पूर्वकोदितम्। पृष्टः कीरो द्वितीयस्तु कथं भो गौरवं मम ॥१५॥
 भवान्कारयतीहोच्चैस्तदाकर्ण्य शुको जगौ। शृणु त्वं राजपुत्राद्य वक्ष्येहं कारणं तव ॥१६॥
 माताप्येका पिताप्येको मम तस्य च पक्षिणः। अहं मुनीभिरानीतः स च नीतो गवाशनैः ॥१७॥
 गवाशनानां स गिरः शृणोति अहं च राजन्मुनिपुङ्गवानाम्। प्रत्यक्षमेतद्भवता हि दृष्टं संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥१८॥

हरिषेण इतने में भोजन करने को आया। उसने सदा की भाँति आज अपनी माता को हँस-मुख न देखकर उदास मन देखा। इससे उसे बड़ा खेद हुआ। माता क्यों दुःखी हैं, इसका कारण जब उसे जान पड़ा तब वह एक पलभर भी फिर वहाँ न ठहर कर घर से निकल पड़ा। यहाँ से चलकर वह एक चोरों के गाँव में पहुँचा। इसे देखकर एक तोता अपने मालिकों से बोला—जो कि चोरों का सिखाया-पढ़ाया था, देखिये, यह राजकुमार जा रहा है, इसे पकड़ो। तुम्हें लाभ होगा। तोते के इस प्रकार कहने पर किसी चोर का ध्यान न गया। इसलिए हरिषेण बिना किसी आफत के आए यहाँ से निकल गया। सच है, दुष्टों की संगति पाकर दुष्टता आती ही है। फिर ऐसे जीवों से कभी किसी का हित नहीं होता ॥९-११॥

यहाँ से निकल कर हरिषेण फिर एक शतमन्यु नाम के तापसी के आश्रम में पहुँचा। वहाँ भी एक तोता था परन्तु यह पहले तोते सा दुष्ट न था। इसलिए उसने हरिषेण को देखकर मन में सोचा कि जिसके मुँह पर तेजस्विता और सुन्दरता होती है उसमें गुण अवश्य ही होते हैं। यह जाने वाला भी कोई ऐसा ही पुरुष होना चाहिए। इसके बाद ही उसने अपने मालिक तापसियों से कहा—वह राजकुमार जा रहा है। इसका आप लोग आदर करें। राजकुमार को बड़ा अचम्भा हुआ। उसने पहले का हाल कह कर इस तोते से पूछा—क्यों भाई, तेरे भाई ने तो अपने मालिकों से मेरे पकड़ने को कहा था और तू अपने मालिक से मेरा मान-आदर करने को कह रहा है, इसका कारण क्या है? तोता बोला—अच्छ राजकुमार, सुनो मैं तुम्हें इसका कारण बतलाता हूँ। उस तोते की और मेरी माता एक ही है, हम दोनों भाई-भाई हैं। इस हालत में मुझमें और उसमें विशेषता होने का कारण यह है कि मैं इन तपस्वियों के हाथ पड़ा और वह चोरों के। मैं रोज-रोज इन महात्माओं की अच्छी-अच्छी बातें सुना करता हूँ और वह उन चोरों की बुरी-बुरी बातें सुनता है। इसलिए मुझमें और उसमें इतना अन्तर है। सो आपने अपनी आँखों से देख ही लिया कि दोष और गुण ये संगति के फल हैं। अच्छों की संगति से गुण प्राप्त होते हैं और बुरों की संगति से दुर्गुण ॥१२-१८॥

अथासौ तापसः पूर्वं शतमन्युश्च वर्तते। चम्पायां भूपती राज्ञी नागवत्यभिधा सती ॥१९॥
जनादिमेजयः पुत्रः पुत्री च मदनावली। तस्या निमित्तिकेनोक्तश्चोदशः शर्मकारणम् ॥२०॥
षट्खण्डाधिपतेरेषा भावि स्त्रीरत्नमुत्तमम्। काले कल्पशते चापि नान्यथा ज्ञानिनो वचः ॥२१॥
अथोद्भविष्ये राजा कलादिकलनामकः। तमादेशं समाकर्ण्य याचयामास तां सतीम् ॥२२॥
अलब्ध्वा च समागत्य महाकोपेन वेगतः। चम्पां वेष्टितवान्गाढं कामान्धः कुरुते न किम् ॥२३॥
नित्यं युद्धे सति क्रूरे गृहीत्वा मदनावलीम्। सुरंगद्वारतो नागवती नष्टा प्रवेगतः ॥२४॥
पल्लिकायां समागत्य शतमन्योश्च वृत्तकम्। प्रोक्त्वा तत्र स्थिता यावत्तावद्वक्ष्ये कथान्तरम् ॥२५॥
पूर्वं च हरिषेणस्य तस्यां रागः प्रवर्तते। कन्यायां नितरां तस्मात्तापसैर्मुग्धमानसैः ॥२६॥
निर्घाटितेन तेनोक्तं हरिषेणेन धीमता। यदीमां कन्यकां पूतां विवाहविधिना ध्रुवम् ॥२७॥
अहं परिणयिष्यामि तदा सद्भक्तिपूर्वकम्। स्वदेशे कारयिष्यामि योजने योजने शुभान् ॥२८॥

इस आश्रम के स्वामी तापसी शतमन्यु पहले चम्पापुरी के राजा थे। उनकी रानी का नाम नागवती है। इनके जनमेजय नाम का एक पुत्र और मदनावती नाम की एक कन्या है। शतमन्यु अपने पुत्र को राज्य देकर तापसी हो गए। राज्य अब जनमेजय करने लगा। एक दिन जनमेजय से मदनावती के सम्बन्ध में एक ज्योतिषी ने कहा कि यह कन्या चक्रवर्ती का सर्वोच्च स्त्रीरत्न होगी और यह सच है कि ज्ञानियों का कहा कभी झूठा नहीं होता ॥१९-२१॥

जब मदनावती की इस भविष्यवाणी की सब ओर खबर पहुँची तो अनेकों राजा लोग उसे चाहने लगे। उन्हीं में उद्देश का राजा कलकल भी था। उसने मदनावती के लिए उसके भाई से मँगनी की। उसकी यह मँगनी जनमेजय ने नहीं स्वीकारी। इससे कलकल को बड़ा ना-गवार गुजरा। उसने रुष्ट होकर जनमेजय पर चढ़ाई कर दी और चम्पापुरी के चारों ओर घेरा डाल दिया। सच है—काम से अन्धे हुए मनुष्य कौन काम नहीं कर डालते। जनमेजय भी ऐसा डरपोक राजा न था। उसने फौरन ही युद्धस्थल में आ-डटने की अपनी सेना को आज्ञा दी। दोनों ओर के वीर योद्धाओं की मुठभेड़ हो गई खूब घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। इधर युद्ध छिड़ा और इधर नागवती अपनी लड़की मदनावती को साथ ले सुरंग के रास्ते से निकल भागी। वह इसी शतमन्यु के आश्रम में आयी। पाठकों को याद होगा कि यही शतमन्यु नागवती का पति है। उसने युद्ध का सब हाल शतमन्यु को कह सुनाया। शतमन्यु ने नागवती और मदनावती को अपने आश्रम में ही रख लिया ॥२२-२५॥

हरिषेण राजकुमार का ऊपर जिकर आया है। उसका मदनावती पर पहले से ही प्रेम था। हरिषेण उसे बहुत चाहता था। यह बात आश्रमवासी तापसियों को मालूम पड़ जाने से उन्होंने हरिषेण को आश्रम से निकाल बाहर कर दिया। हरिषेण को इससे बुरा लगा, पर वह कुछ कर-धर नहीं सकता था। इसलिए लाचार होकर उसे चला जाना पड़ा। उसने चलते समय प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा इस पवित्र राजकुमारी के साथ ब्याह होगा तो मैं अपने सारे देश में चार-चार कोस दूरी पर

श्रीमज्जिनालयान्पूतान्यवित्रीकृतभूतलान्। स्वमोक्षगामिनां चित्ते जैनभक्तिर्निरन्तरम् ॥२९॥
 सिन्धुदेशेऽथ विख्याते नाम्ना सिन्धुतटे पुरे। राजा सिन्धुनदो राज्ञी सिन्धुमत्यभिधा तयोः ॥३०॥
 सिन्धुदेव्यादिपुत्रीणां शतं रूपगुणान्वितम्। नैमित्तिकेन चादिष्टं चक्रिणस्तदपि ध्रुवम् ॥३१॥
 सिन्धुनद्यां तथा सर्वकन्यास्नानं निरूपितम्। सहैव हरिषेणेन रागोत्पत्तिश्च जल्पिता ॥३२॥
 तत्रासौ हरिषेणश्च जित्वा देशमहागजम्। ताः कन्याः परिणीयोच्चैश्चित्रशालां सुखस्थितः ॥३३॥
 तदा वेगवतीनाम्ना विद्याधर्या निशि द्रुतम्। सुप्तो नीतस्ततस्तेन प्रोत्थितेन नभस्तले ॥३४॥
 दृष्ट्वा तारावलीं कोपात्तां हन्तुं खेचरीं स्वयम्। बद्धामुष्टिस्तदा कृत्वा प्राञ्जलिं सापि संजगौ ॥३५॥
 शृणु स्वामिन्खगाद्रौ हि सूर्योदरमहापुरे। राजा श्रीन्द्रधनुर्धीमान् राज्ञी बुद्धिमती तयोः ॥३६॥
 सुपुत्री जयचन्द्राख्या पुरुषद्वेषकारिणी। आदेशश्चेति संजातस्तस्याः कन्याशतप्रियः ॥३७॥
 भावी प्राणप्रियस्तस्मान्मया ते रूपपट्टकम्। तस्याः संदर्शितं सापि त्वय्यासक्ता बभूव च ॥३८॥

अच्छे-अच्छे सुन्दर और विशाल जिनमन्दिर बनवाऊंगा, जो पृथ्वी को पवित्र करने वाले कहलायेंगे। सच है, उन लोगों के हृदय में जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति सदा रहा करती है जो स्वर्ग या मोक्ष का सुख प्राप्त करने वाले होते हैं ॥२६-२९॥

प्रसिद्ध सिन्धुदेश के सिन्धुतट शहर के राजा सिन्धुनद और रानी सिन्धुमती के कोई सौ लड़कियाँ थीं। ये सब बड़ी सुन्दर थीं। उन लड़कियों के सम्बन्ध में नैमित्तिक ने कहा था कि-ये सब राजकुमारियाँ चक्रवर्ती हरिषेण की स्त्रियाँ होंगी। ये सिन्धुनदी पर स्नान करने के लिए जायेंगी। उसी समय हरिषेण भी यहीं आ जाएगा। तब परस्पर की चार आँखें होते ही दोनों ओर से प्रेम का बीज अंकुरित हो उठेगा ॥३०-३२॥

नैमित्तिक का कहना ठीक हुआ। हरिषेण दूसरे राजाओं पर विजय करता हुआ उसी सिन्धुनदी के किनारे पर आकर ठहरा। उसी समय सिन्धुनद की कुमारियाँ भी यहाँ स्नान करने के लिए आई हुई थीं। प्रथम ही दर्शन में दोनों के हृदय में प्रेम का अंकुर फूटा और फिर वह क्रम से बढ़ता ही गया। सिन्धुनद से यह बात छिपी न रही। उसने प्रसन्न होकर हरिषेण के साथ अपनी लड़कियों का ब्याह कर दिया ॥३३-३४॥

रात को हरिषेण चित्रशाला नाम के एक खास महल में सोया हुआ था। इसी समय एक वेगवती नाम की विद्याधरी आकर हरिषेण को सोता हुआ ही उठा ले चली। रास्ते में हरिषेण जग उठा। अपने को एक स्त्री कहीं लिए जा रही है, इस बात का मालूम होते ही उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने तब उसे विद्याधरी को मारने के लिए घूँसा उठाया। उसे गुस्सा हुआ देख विद्याधरी डरी और हाथ जोड़ कर बोली-महाराज, क्षमा कीजिए। मेरी एक प्रार्थना सुनिए। विजयावर्द्ध पर्वत पर बसे हुए सूर्योदर शहर के राजा इन्द्रधनु और रानी बुद्धिमती की एक कन्या है। उसका नाम जयचन्द्रा है। वह

तत्समीपं ततो देव नीयते त्वं सुपुण्यभाक् । इत्याकर्ण्य प्रहर्षेण प्राप्तोसौ खेचराचलम् ॥३९॥
 तद्विवाहे परिप्राप्ते गंगाधरमहीधरौ । कन्यामैथुनिकौ युद्धं कर्तुकामौ समागतौ ॥४०॥
 तत्संग्रामे सुरत्नानि सनिधानानि सद्भटः । लब्ध्वा श्रीहरिषेणोसौ भूत्वा षट्खण्डनायकः ॥४१॥
 मदनादिवलीं भूत्या परिणीय निजं गृहम् । गत्वा मनुस्तथा जैनरथयात्रां विधाय च ॥४२॥
 सुधीः संकारयामास श्रीमज्जैनालयांस्तथा । अहो पुण्यवतां पुंसां किं शुभं यन्न जायते ॥४३॥
 स जयतु जिनदेवो देवदेवेन्द्रवन्द्यो यदुदितवरधर्मे शर्मभागी जनः स्यात् ।
 गुणगणमणिखानिः स्वर्गमोक्षप्रयोनिः सकलभुवनचन्द्रः केवलज्ञानसान्द्रः ॥४४॥

इति कथाकोशे हरिषेणचक्रवर्तिन आख्यानं समाप्तम् ।

सुन्दर है, बुद्धिमती है और बड़ी चतुर है। पर उसमें एक दुर्गुण है और वह महा दुर्गुण है। वह यह कि उसे पुरुषों से बड़ा द्वेष है, पुरुषों को वह आँखों से देखना तक पसन्द नहीं करती। नैमित्तिक ने उसके सम्बन्ध में कहा है कि जो सिन्धुनद की सौ राजकुमारियों का पति होगा, वही इसका भी होगा। तब मैंने आपका चित्र ले जाकर उसे बतलाया। वह उसे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसका सब कुछ आप पर न्यौछावर हो चुका है। वह आपके सम्बन्ध की तरह-तरह की बातें पूछ करती है और बड़ी चाव से उन्हें सुनती है। आप का जिकर छिड़ते ही वह बड़े ध्यान से उसे सुनने लगती है। उसकी इन सब चेष्टाओं से जान पड़ता है कि उसका आप पर अत्यन्त प्रेम है। यही कारण है कि मैं उसी की आज्ञा से आपको उसके पास लिए जा रही हूँ। सुनकर हरिषेण बहुत खुश हुआ और फिर वह कुछ भी न बोलकर जहाँ उसे विद्याधरी लिवा गई, चला गया। वेगवती ने हरिषेण को इन्द्रधनु के महल पर ला रखा। हरिषेण के रूप और गुणों को देख कर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई जयचन्द्रा के माता-पिता ने उसके ब्याह का भी दिन निश्चित कर दिया। जो दिन ब्याह का था उस दिन राजकुमारी जयचन्द्रा के मामा के लड़के गंगाधर और महीधर ये दोनों हरिषेण पर चढ़ आए। इसलिए कि वह जयचन्द्रा को स्वयं ब्याहना चाहते थे। हरिषेण ने इनके साथ बड़ी वीरता से युद्ध कर उन्हें हराया। उस युद्ध में हरिषेण के हाथ जवाहरात और बहुत धन-दौलत लगी। वह चक्रवर्ती होकर अपने घर लौटा। रास्ते में उसने अपनी प्रेमिणी मदनावती से भी ब्याह किया। घर आकर फिर उसने अपनी माता की इच्छा पूरी की। पहले उसी का रथ चला। इसके बाद हरिषेण ने अपने देशभर में जिन मन्दिर बनवा कर अपनी प्रतिज्ञा को भी निबाहा। सच है-पुण्यवानों के लिए कोई काम कठिन नहीं ॥३५-४३॥

वे जिनेन्द्र भगवान् सदा जय लाभ करें, जो देवादिकों द्वारा पूजा किए जाते हैं, गुणरूपी रत्नों की खान हैं, स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले हैं, संसार के प्रकाशित करने वाले निर्मल चन्द्रमा हैं केवलज्ञानी, सर्वज्ञ हैं और जिनके पवित्र धर्म का पालन कर भव्यजन सुख लाभ करते हैं ॥४४॥

९९. परगुणग्रहणाख्यानम्

नमस्कृत्य जिनं देवं सुरासुरसमर्चितम्। वक्ष्येहं परजन्तूनां गुणग्रहणसत्कथाम् ॥१॥
 धर्मानुरागतः स्वर्गे सौधर्मेण च धीमता। प्रोक्तं स्वस्य सभामध्ये कुर्वता गुणिनां कथाम् ॥२॥
 यस्त्यक्त्वा परदोषौघान्स्वल्पं चान्यगुणं मुदा। सुधीर्विस्तारयत्युच्चैरुत्तमः स जगत्त्रये ॥३॥
 तत्समाकर्ण्य चैकेन पृष्ठः स तु सुधाशिना। किं कोपि विद्यते देव तथाभूतस्तु भूतले ॥४॥
 सौधर्मेन्द्रस्ततः प्राह द्वारावत्यां गुणोज्ज्वलः। वासुदेवोन्तिमोप्यस्ति कृष्णनामा महाप्रभुः ॥५॥
 ततः स वेगतो देवः समागत्य महीतलम्। श्रीमन्नेमिजिनाधीशवन्दनार्थं प्रगच्छतः ॥६॥
 तस्य त्रिखण्डभूपस्य परीक्षार्थं स्वमायया। मार्गे दुर्गन्धताक्रान्तं मृतकुक्कुररूपकम् ॥७॥
 धृत्वा स्थितस्तदङ्गोत्थमहादुर्गन्धतो द्रुतम्। सर्वसेनाजनो नष्टस्तदा सोपि सुरः पुनः ॥८॥
 द्वितीयविप्ररूपेण समागत्य प्रपञ्चतः। वासुदेवाग्रतश्चक्रे कुक्कुरस्थप्रदूषणम् ॥९॥
 तदा श्रीवासुदेवेन प्रोक्तं भो कुक्कुरानने। कीदृशी स्फटिकाकारा दृश्यते दन्तसन्ततिः ॥१०॥

९९. दूसरों के गुण ग्रहण करने की कथा

जिन्हें स्वर्ग के देव पूजते हैं उन जिन भगवान् को नमस्कार कर दूसरों के दोषों को न देखकर गुण ग्रहण करने वाले की कथा लिखी जाती है ॥१॥

एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र धर्म-प्रेम के वश हो गुणवान् पुरुषों की अपने सभा में प्रशंसा कर रहा था। उस समय उसने कहा-जिस पुरुष का जिस महात्मा का हृदय इतना उदार है कि वह दूसरों के बहुत से औगुणों पर बिल्कुल ध्यान न देकर उसमें रहने वाले गुणों के थोड़े भी हिस्से को खूब बढ़ाने का यत्न करता है, जिसका ध्यान सिर्फ गुणों के ग्रहण करने की ओर है वह पुरुष, वह महात्मा संसार में सबसे श्रेष्ठ है, उसी का जन्म भी सफल है। इन्द्र के मुँह से इस प्रकार दूसरों की प्रशंसा सुन एक मौजी ले देव ने उससे पूछा-देवराज, जैसा इस समय आपने गुणग्राहक पुरुष की प्रशंसा की है, क्या ऐसा कोई बड़भागी पृथ्वी पर है। इन्द्र ने उत्तर में कहा-हाँ हैं और वे अन्तिम वासुदेव द्वारका के स्वामी श्रीकृष्ण। सुनकर वह देव उसी समय पृथ्वी पर आया। इस समय श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् के दर्शनार्थ जा रहे थे। उनकी परीक्षा के लिए यह मरे कुत्ते का रूप ले रास्ते में पड़ गया। उसके शरीर से बड़ी ही दुर्गन्ध भभक रही थी। आने-जाने वालों के लिए इधर-उधर होकर आना-जाना मुश्किल हो गया था। उसकी उस असह्य दुर्गन्ध के मारे श्रीकृष्ण के साथी सब भाग खड़े हुए। उसी समय वह देव एक दूसरे ब्राह्मण का रूप लेकर श्रीकृष्ण के पास आया और उस कुत्ते की बुराई करने लगा, उसके दोष दिखाने लगा। श्रीकृष्ण ने उसकी सब बातें सुन-सुनाकर कहा-अहा! देखिये, इस कुत्ते के दाँतों की श्रेणी स्फटिक के समान कितनी निर्मल और सुन्दर है। श्रीकृष्ण ने कुत्ते के और दोषों पर उसकी दुर्गन्ध आदि पर कुछ ध्यान न देकर उसके दाँतों की, उसमें रहने वाले थोड़े से भी अच्छे भाग की उल्टी प्रशंसा ही की। श्रीकृष्ण की पशु के लिए